



'अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम'

'अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम' हिंदी के प्राध्यापक डॉ. राजेंद्र साह की नवीनतम संपादकीय कृति है, जिसमें लगभग अस्सी समालोचकों ने हिंदी साहित्य में प्रचलित विभिन्न विमर्शों पर अपना आलेख प्रस्तुत किया है. इस किताब की उपादेयता पर 'संपादकीय' में अपनी बात रखते हुए डॉ. राजेंद्र साह ने लिखा है कि मानव होते हुए भी मानव न समझे जाने की पीड़ा दलित एवं आदिवासी साहित्य के केंद्र में है तो पुरुष से हीनतर समझे जाने का दर्द स्त्री साहित्य में है. जो समाज की गंदगी को परिष्कृत करता रहा किंतु समाज ने उसे दरकिनार कर दिया और जो गंदगी लगाता रहा वह पवित्र एवं सभ्य हो गया। इस असंगत एवं अमानवीय सोच ने दलित विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार की.

आदिवासी विमर्श की जरूरत को रेखांकित करते हुए प्रो. राजेंद्र साह आगे लिखते हैं -मूल निवासी कहे जानेवाले आदिवासी की स्थिति सर्वाधिक रूप से विषम है. आधुनिक सभ्यता एवं ज्ञान के प्रकाश से दूर आज भी ये जंगली जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं . विस्थापन की गहन समस्या तो है ही. देश की मुख्य धारा से कटी उनकी जिंदगी विमर्श का एक अहम मुद्दा है. वहीं स्त्री की दोहरी जिंदगी को रेखांकित करते हुए संपादक ने लिखा है- कामकाजी महिलाओं को बाहर के अलावा घर की भी जिम्मेदारियां उठानी पड़ती हैं. संतति के विकास में महिलाओं को कितनी पीड़ा झेलनी पड़ती है, इसका अंदाजा पुरुषों को कभी नहीं हो सकता, किन्तु सारा श्रेय आजतक पुरुष-समाज ही लेता रहा है।

इन दिनों किन्नर की स्थितियों पर किन्नर- विमर्श पर भी साहित्य का एक बड़ा हिस्सा लगातार लिखा जा रहा है. संपादक के शब्दों में- सामाजिक तिरस्कार का भाव किन्नर साहित्य के मूल में है. मात्र प्रजनन क्षमता से विहीन होने के कारण इनके प्रति जिन अपमानजनक विशेषणों का प्रयोग किया जाता है, उनसे हमारी सोच की अहंवादी प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है.

हिन्दी साहित्य में विमर्श पर पर्याप्त चर्चा होती रहती है, पर विमर्श के साथ 'अस्मितामूलक' शब्द हमें पेशोपेश में डाल सकता है. असल में 'अस्मिता' शब्द का अर्थ है अपनी विषयगत पहचान के लिए बाज़ाबता जद्दोजहद करना. इस प्रकार अस्मिता की लड़ाई अपने अहम की लड़ाई है. यह लड़ाई अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए की गयी है. इसी पुस्तक में डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - यदि अस्तित्व ही नहीं रहे तो अस्मिता लेकर क्या करेंगे और अस्मिता के बिना क्या अस्तित्व सार्थक माना जाएगा. (पृष्ठ 11)

साहित्य में 'विमर्श' शब्द मोटे तौर पर 21वीं सदी से सुनने को मिलता है, जब समाज के वंचित समूह ने अपने अधिकार व अस्मिता के लिए संघर्ष करना सीखा. इस संघर्ष में ऐसे लेखक भी शामिल हुए जो न दलित, आदिवासी या स्त्री थे। फिर भी, महान दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार दलितों द्वारा लिखा जानेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है. ओमप्रकाश वाल्मीकि के भी अपने तर्क हैं कि दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है. 'अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम' नामक इस पुस्तक में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, किसान विमर्श, विस्थापन विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि पर विस्तार से प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है. सबसे बड़ी बात है कि आलेख की भाषा पूरी साफगोई और तर्क के साथ अपनी बात रखती है.

पुस्तक में दलित विमर्श पर प्रो. कमलानंद झा, अनुरुद्ध सिंह, डॉ. निवेदिता कुमारी, डॉ. सुधा कुमारी आदि के महत्वपूर्ण आलेख हैं. दलित की बात करते हुए प्रो. कमलानंद झा ने लिखा है कि दलित लोगों का दुख अलग है, वह जातिवाद के मारे हुए हैं. दूसरी, दलितों की भाषा भी अलग है. दलित लेखक ने अपनी भाषा में अपनी जिंदगी लिखी है. एक महत्वपूर्ण बात इस लेखक ने यह उठाई है कि दलितों का संबंध स्थिति से होना चाहिए न कि केवल जाति से.

जहां तक मैं समझता हूं- जो जाति से दलित हैं, वही दलित दंश झेल रहे हैं. सवर्ण के जीवन में अभाव के बाद भी खुशहाली दिखती है. सवर्णों का दलितों के प्रति होनेवाला व्यवहार 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से भी देखा जा सकता है, जहां हेड मास्टर स्कूल के दिनों में लेखक को बुरी बुरी गालियां देकर पुकारता है. जो भाषा साहित्य में अश्लील समझी जाती है, वह भाषा दलित जीवन की यथार्थ भाषा बन जाती है.

डॉ. अनुरुद्ध सिंह अपने आलेख में दलितों के जीवन को मिथक से जोड़ते हुए लिखते हैं- दलित लेखकों ने ऐतिहासिक, पौराणिक मिथकों के द्वारा दलित जीवन की विसंगतियों और सामाजिक संदर्भों की वास्तविकता को रेखांकित किया है. कर्ण, एकलव्य, शंबूक दलितों की जिजीविषा के प्रतीक बन गये हैं.

दलित साहित्य हमारे सामने आत्मकथा के रूप में सशक्त तरीके से उपस्थिति दर्ज करता है. बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों की प्रमुख उपलब्धि दलित साहित्य की रही है. दलित साहित्य का उद्देश्य दलितों की मुक्ति है, जो समाज में समानता का भाव पैदा कर सके. इसी पुस्तक में प्रो. डॉ. दिग्विजय टेंगसे ने दलित साहित्य के बहाने ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का जायजा लिया है. लेखक के अनुसार उनकी कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' में गांव के दलितों की अज्ञानता को रेखांकित किया गया है. साथ ही बारीकी से जमींदारों के छल-कपट को भी दिखाया गया है. ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' और 'हरदेई' कहानी भंगी जाति की औरतों के जीवन पर है. इस कहानी में अम्मा एक स्वाभिमानी, परिश्रमी और सच्चरित्र महिला है.

इस पुस्तक में सबसे ज्यादा स्त्री विमर्श पर लगभग पैंतीस लेखकों के गंभीर आलेख हैं. सबसे बड़ी बात इन आलेखों में रेणु, नागार्जुन, शांति सुमन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, अनामिका, विनोद शुक्ल, मधु

कांकरिया, शमशेर आदि की रचनाओं के स्त्री पात्रों का अलग-अलग महत्वपूर्ण जायजा लिया गया है. इसलिए यहां गुप्त की यशोधरा की भी आवाज है तो 'सेवा सदन' की सुमन और भीष्म साहनी की माधवी की भी. भीष्म साहनी की माधवी एक साथ तीन पुरुषों से पुत्र उत्पन्न करती है. यह कहानी कोख बेचनेवाली मजबूर स्त्री के मातृत्व का भी अंकन करती है.

रेणु की कहानी पर डॉ.तीर्थनाथ मिश्र ने अपनी बात रखी है- रेणु के स्त्री पात्र अपनी अस्मिता के लिए कोई नारे नहीं लगाती, विद्रोह नहीं करती, किन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि उनमें चेतना का अभाव है. वह विद्रोह नहीं, प्रतिरोध रचती हैं. 'नैना जोगिन' की रतनी और 'लाल पान की बेगम' की बिरजू की मां एक मुखर नारी है. आमतौर पर जब हम स्त्री विमर्श की बात करते हैं तो कविता का पक्ष गौण बन जाता है. इस पुस्तक में स्त्री विमर्श के बहाने काव्य पक्ष पर भी काफी चर्चा की गयी है. गीतकार और शायर कुंवर बेचैन अपने गीतों में बेटी की यथार्थ स्थिति का वर्णन करते हैं-

बेटियां /शीतल हवाएं हैं/ जो पिता के घर /बहुत दिनों तक नहीं रहती....

इस पुस्तक में शैलेंद्र कुमार साहु ने स्त्री अस्मिता पर शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है -अब ये नारियां सशक्त हो रही हैं.हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं.उनका बढ़ना किसी की आंखों में लगातार गड़ रहा है. इस बहाने प्रभा दीक्षित के नवगीत अपनी बात मजबूती से रखते हैं -

साइकिल चलाती हैं

पैदल भी चलती हैं

लौटती दुपहरी में

बस में भी चलती हैं

भीड़ - भरी सड़कों के

आवारा लड़कों की

आंखों में गड़ती हैं

गांवों की लड़कियां।

सिंधु कुमारी ने अनामिका की कविताओं में अस्मितामूलक विमर्श की तलाश की है. अनामिका की रचनाओं में स्त्री के अनेक पहलू नजर आते हैं. वह अपनी कविताओं में बार-बार स्त्री - शोषण, उत्पीड़न की बात करती हैं .यह उत्पीड़न सदियों से स्त्री - जाति के ऊपर हो रहा है, पर उनकी स्त्री दया की भीख नहीं मांगती, बल्कि मजबूती के साथ खड़ी होती है -

मैं एक दरवाजा थी

मुझे जितना पीटा गया

मैं उतनी खुलती गयी।

अंजू कुमारी अपने लेख में सविता सिंह के स्त्री संघर्ष को उठाती हैं और मानती हैं कि सविता सिंह की कविताओं में स्त्री अपने अस्तित्व की निरंतर खोज करती है-

मैं किसकी औरत हूँ

कौन है मेरा परमेश्वर

किसके पांव दबाती हूँ

किसका दिया खाती हूँ

किसकी मार सहती हूँ---

पुस्तक में 'कृष्णा सोबती के उपन्यास में स्त्री चेतना' सुनंदा कुमारी का आलेख है. सदियों से समाज में दबायी गयी स्त्री कृष्णा सोबती के कथा- साहित्य का मुख्य स्वर है. इनकी स्त्रियां हर समय साहस का परिचय देती हैं . 'सूरजमुखी अंधेरे में' की रत्ती हो या मित्रो वह अपनी समस्याओं से लड़ते हुए भी अपनी पहचान बनाए रखती है. आलेख में सुनंदा ने लिखा है कि- उनके उपन्यास के सभी स्त्री पात्र अपनी स्थिति को लेकर जागरूक हैं. 'समय सरगम' की अरण्या उम्र के अंतिम पड़ाव में है. वह अविवाहित है, फिर भी मन से इतनी मजबूत है कि औरों के लिए मिसाल है. प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' और मन्नू भंडारी की स्त्री चेतना पर दिव्या कुमारी के आलेख भी पठनीय हैं. इन दिनों हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की भी काफी चर्चा है. डॉ.सूर्य प्रताप, डॉ. क्षमा कुमारी और अर्चना कुमारी के आलेख इस विमर्श को हृद तक स्पष्ट करते हैं. इन रचनाकारों ने माना है कि लैंगिक आधार बनाकर किसी को भी दरकिनार करना कहीं से भी जायज ठहराया नहीं जा सकता. उभयलिंगी का समाज में जन्म लेना अभिशाप्त माना जाता है, इसलिए सामाजिक लोक- लाज से बचने के लिए परिवार को दोहरी यंत्रणा से गुजरना पड़ता है. किन्नर विमर्श पर लिखी प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', चित्रा मुद्गल

का 'नाला सोपारा' आदि की चर्चा विस्तार से की गयी है.

आदिवासी विमर्श की बात करें तो प्रो. चंद्रभानु प्रसाद सिंह समेत अन्य लेखकों ने आदिवासी केंद्रित कहानियों- कविताओं का जिक्र अपने आलेख में किया है. प्रो. चंद्रभानु सिंह आदिवासी की स्थिति पर अपनी फिक्र जाहिर करते हुए लिखते हैं- आदिवासियों के जल, जंगल और जीवन से संबंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है. भाषा की बात करते हुए वह कहते हैं कि दलितों की तुलना में आदिवासी अपनी पृथक भाषाई सांस्कृतिक पहचान को लेकर कहीं अधिक आग्रहशील रहे हैं. इन आलेखों में आदिवासी जीवन के पहले कहानीकार माने जानेवाली राधाकृष्ण की 'मुड़कर भी न देखा', संजीव कृत 'पांव तले की धूप', मेहरुन्निसा परवेज़ की 'टोना', भालचंद्र जोशी की 'पहाड़ों पर रात' आदि कहानियों की विस्तार से चर्चा है. संजीव की कहानी 'पांव तले की धूप' में आदिवासी की अस्मिता एवं अस्तित्व रक्षा हेतु उनका संघर्ष दिखलाया गया है. कोमल की कहानी 'पहचान' में आदिवासी युवती जब जाति प्रमाण पत्र बनवाने मुखिया के पास पहुंचती है तो मुखिया उसके शरीर पर हाथ देकर कहता है - तुममें तो आदिवासियों का कोई चिह्न नजर नहीं आता.

ठीक इसी प्रकार इस पुस्तक में वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श किसान विमर्श आदि पर भी गहन अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है. प्रो. राजेंद्र साह ने रामवृक्ष बेनीपुरी के साहित्य में जो वृद्ध विमर्श तलाशा है वह काफी शोधपूर्ण है. उन्होंने

बताया है कि 'चिता के फूल' कहानी में आजादी की लड़ाई में कुर्बान हुए अपने इकलौते बेटे के विरह से व्यथित माता-पिता की बदहाली यहां दिखाई देती है. वैसे ही 'जीवन तरु' कहानी में हाकिम सिंह की वृद्धावस्था का मार्मिक चित्रण हुआ है. किसान विमर्श के अन्तर्गत बजरंग बिहारी तिवारी का 'दलित आंदोलन की पारस्परिकता : किसान आंदोलन और दलित कविता' सुचिंतित पठनीय आलेख है।

कुल मिलाकर एक साथ इतने सारे नये-पुराने विमर्शों की परंपरा को समझने के लिए इस पुस्तक के महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता.

अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम

■ प्रो. राजेन्द्र साह
संपादक

